परमात्मा द्वारा प्रदत्त इस नश्वर शरीर का अस्तित्व संसार में कहीं भी हो सकता है। शरीर के जन्म के पश्चात् आते हैं– मोह-माया-बंधन, सामाजिक-धार्मिक-पारिवारिक कर्त्तव्य और उनका निर्वहन। ये सारी चीजें एक जंजीर की तरह कार्य करती हैं, जो आपको अपनी ओर एक कड़ी दूसरी कड़ी को आकर्षण के सहारे जोड़कर रखती हैं। इस कड़ी को तोड़कर गुरु को साक्षात् परमात्मा मानकर स्वयं को समर्पित कर देना, एक असाधारण कार्य होता है; लेकिन जो भी इस समर्पण को अपना लेता है और इस कड़ी को तोड़ लेता है, वहीं महात्मा अर्थात महापुरुष बन जाता है। समाज और परिवार के बंधन में जन्म लेना कोई अभिशाप नहीं होता; बल्कि एक अवसर प्राप्त होता है– आत्म-परीक्षण का, इस सांसारिक बंधनों से स्वयं को मुक्त करने का और प्रभु पिताजी के प्रति पूर्ण समर्पण साबित करने का।

गृहस्थ जीवन जीते हुए भी गृहस्थ और उनके बंधनों से अपने आपको मुक्त रखना अपने आप में एक महात्म्य है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन के कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए भी मनुष्य परमपिता के प्रति पूर्ण समर्पण, भक्तिभाव, सेवाभाव का कार्य कैसे कर सकता है? इन प्रश्नों का उत्तर भगवान् अथवा महापुरुष राम की मानिंद आनन्द देव गुरु भगवान् जी ने अपने गृहस्थ जीवन से लेकर इस सांसारिक जीवन को जीते हुए दिया है; जो इस ग्रंथ का प्रमुख विषय है।

राजा जनक को 'विदेह' की संज्ञा दी गयी थी; जिसका मतलब होता है– 'जीते जी मुक्त हो जाना'। राजा जनक को यह उपाधि ऋषियों द्वारा इसलिए दी गई थी क्योंकि ऋषियों ने अपने तपोबल से यह जान लिया था कि राजा जनक एक असाधारण महापुरुष हैं, जिन पर गृहस्थ जीवन और उनके बंधनों का कोई असर नहीं है। जो उनके चेहरे और जीवन में उनको बेचैन करता है; वह हावभाव वास्तव में सांसारिक लोगों को ही दिखता है, अर्थात जो जिस भाव और श्रद्धा से उनको देखता था उनको वैसे ही वे दिखते थे। ठीक इसी प्रकार का जीवन जीने वाले प्रभु पिताजी आनन्दयोगी आनन्दमय लोगों के लिए हैं, जो जिस भाव से उनको देखता है वे वैसे ही दिखते हैं। यह दिव्य **आश्रम** सांसारिक और आध्यात्मिक जीवन जीने वाले प्रत्येक मनुष्यों के लिए एक व्यवहारिक रूप में उद्धरण और प्रेरणा है जिसके द्वारा आप अपने इस मनुष्य रूपी जीवन को परम लोक-कल्याणकारी बना सकते हैं। ॐ शान्तिमय

–आनन्द किरन आनन्दमय